EDITORIAL

विचार: अमेरिका-चीन संबंधों के नए समीकरण

चीन के साथ अमेरिका का आर्थिक और तकनीकी टकराव जारी रहना तय है, जिससे भारत जैसी उभरती शक्तियों के लिए अमेरिकी निवेश और विशेषज्ञता प्राप्त करने के अवसर खुलते हैं।

BY SREERAM CHAULIAEDITED BY: **NARENDER SANWARIYA**TUE, 19 MAY 2026

HIGHLIGHTS

1. ट्रंप के चीन दौरे से अमेरिकी नीति में नरमी।

2. ताइवान पर अमेरिकी सैन्य हस्तक्षेप को लेकर अनिश्चितता।

3. भारत को सैन्य क्षमता बढ़ा आर्थिक लाभ उठाना होगा।

श्रीराम चौलिया। अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप का हालिया चीन दौरा कई मायनों में महत्वपूर्ण रहा, क्योंकि इसका सरोकार भारत और अन्य एशियाई देशों की विदेश नीति एवं रणनीतिक दशा-दिशा से भी है। चीनी राष्ट्रपति शी चिनफिंग के साथ ट्रंप की भाव-भंगिमाओं से यह भी आभास हुआ कि वाशिंगटन नए शीत युद्ध की तीखी प्रतिद्वंद्विता के दायरे से बाहर निकलकर बीजिंग के साथ कुछ मामलों में सह-अस्तित्व की संभावनाएं तलाशने में जुटा है। चीन के प्रति अमेरिका की इस नरमी का मूल कारण है कि ट्रंप प्रशासन दक्षिण अमेरिका को अपना प्रमुख प्रभुत्व क्षेत्र मानता है और एशिया में अनुकूल शक्ति संतुलन बनाए रखने के प्रति उतना उत्साहित नहीं, जितना पूर्ववर्ती बाइडेन प्रशासन था।

हालांकि अभी चीन ही ऐसा एकमात्र देश है, जो अमेरिका को वैश्विक स्तर पर चुनौती दे रहा है। प्रतीत होता है कि इस प्रतिद्वंद्वी से पार पाने में ट्रंप पारंपरिक अमेरिकी दृष्टिकोण में भरोसा नहीं रखते। जैसे कि ताइवान के मुद्दे को ही लें। ताइवान की स्वतंत्रता और अस्तित्व को चीन के अतिक्रमण से बचाने के लिए अमेरिका दशकों से सैन्य सहायता और सुरक्षा आश्वासन देता आ रहा है, लेकिन इस बीच पूर्वी यूरोप एवं पश्चिमी एशिया के युद्धों में उलझने के बाद और चीन के साथ रिश्तों की नजाकत को देखते हुए अमेरिका ने ताइवान को स्वीकृत, लेकिन अभी तक वितरित न किए गए हथियारों में 21 अरब डालर से अधिक का बकाया रखा है।

ताइवान के संदर्भ में बीजिंग में चिनफिंग ने एक लक्ष्मण रेखा खींचते हुए ट्रंप को चेताया कि अगर इस मुद्दे को गलत तरीके से आगे बढ़ाया गया तो इससे चीन और अमेरिका के बीच खतरनाक संघर्ष हो सकता है। बीजिंग से लौटकर ट्रंप ने मानो चिनफिंग के प्रभाव में आकर यह कहा कि चीन बहुत शक्तिशाली देश है, जो नन्हें ताइवान से मात्र 59 मील दूर है, जबकि अमेरिका की ताइवान से दूरी 9,500 मील है। उन्होंने यह भी इशारा किया कि अगर ताइवान की ताकत माना जाने वाला सेमीकंडक्टर उद्योग अमेरिका में स्थानांतरित कर दिया जाए तो ताइवान की कोई अहमियत ही नहीं रह जाएगी और चीन उसे जब चाहे अपने चंगुल में ले सकता है।

ताइवान पर किसी संभावित चीनी हमले की सूरत में अमेरिकी सैन्य हस्तक्षेप को लेकर भी ट्रंप ने कोई आश्वासन नहीं दिया। ताइवान के साथ जापान की सुरक्षा के जुड़ाव को देखते हुए इसे लेकर और अनिश्चितता पैदा हो गई है कि अमेरिका समूचे पूर्वी एशिया को उसके अपने हाल पर छोड़ सकता है, जिससे चीनी वर्चस्व की आशंका ही बढ़ेगी। पहले ऐसा लग रहा था कि जापान, आस्ट्रेलिया, भारत और दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों के साथ मिलकर अमेरिका चीनी आक्रामकता के सापेक्ष शक्ति का संतुलन बनाए रखने में सहायक बना रहेगा, लेकिन अब यह धारणा ध्वस्त होती दिख रही है। कहने को तो अमेरिका हिंद-प्रशांत क्षेत्र को लेकर अभी भी गंभीर है और उसकी सैन्य सक्रियता भी जारी है, लेकिन चीन को पीछे धकेलने के उसके इरादे विश्वसनीय नहीं लग रहे हैं।

भू-राजनीति के हिसाब से अमेरिका चीन के प्रति भले ही ढुलमुल रवैया अपना रहा हो, लेकिन आर्थिक और तकनीकी प्रतिस्पर्धा में दोनों महाशक्तियों के बीच टकराव में कोई खास कमी नहीं दिख रही। ट्रंप मूल रूप से हैं तो एक व्यापारी ही और व्यापारिक दबाव की रणनीति को समझते हुए ही उन्होंने चीन को निर्यात होने वाली उच्च तकनीक पर न तो नियंत्रण में कोई ढील दी और न ही उस पर कायम 31 प्रतिशत के व्यापार शुल्क में कोई रियायत दी। चीन ने दुर्लभ खनिजों की आपूर्ति रोककर अमेरिका को थोड़ा बहुत मजबूर जरूर किया था, लेकिन वाशिंगटन ने बीजिंग पर वाणिज्यिक दबाव पूरी तरह नहीं हटाया है।

चीन दौरे पर ट्रंप के साथ अमेरिका के दिग्गज उद्योगपतियों का बड़ा प्रतिनिधिमंडल भी गया था, लेकिन वहां ऐसी महत्वाकांक्षी घोषणाएं नहीं हुईं, जिनसे लगे कि उन सुनहरे दिनों की कोई वापसी हो पाएगी, जब अमेरिकी पूंजीवादी चीन में निवेश बढ़ाकर दोनों देशों के बीच परस्पर निर्भरता को नए सिरे से आगे बढ़ाएंगे। ऐसे रुझानों को देखें तो चीन-अमेरिका संबंधों की मिश्रित तस्वीर उभरी है। ट्रंप युग में चीन के साथ अमेरिका का भू-राजनीतिक टकराव तो कम हो रहा है, जिससे एशिया में चीन के अनियंत्रित क्षेत्रीय विस्तारवाद को लेकर आशंकाएं बढ़ रही हैं। जबकि दूसरी ओर, चीन के साथ अमेरिका का आर्थिक और तकनीकी टकराव जारी रहना तय है, जिससे भारत

जैसी उभरती शक्तियों के लिए अमेरिकी निवेश और विशेषज्ञता प्राप्त करने के अवसर खुलते हैं।

इस परिदृश्य से साफ है कि आक्रामक चीन के विरुद्ध प्रतिरक्षा और प्रतिरोध के लिए भारत को मुख्यतः अमेरिका से आस लगाए रखना आत्महत्या के समान होगा। हमें अपनी सैन्य क्षमताओं को प्राथमिकता देकर उन्हें धार देनी होगी और चीनी आक्रामकता से परेशान पड़ोसियों के साथ मिलकर सुरक्षा का मजबूत ढांचा खड़ा करना होगा। क्वाड जैसे संगठनों से अगर अमेरिका किनारा भी करे तो अन्य सदस्यों के साथ मिलकर उसे सशक्त करने के उपाय किए जाएं। इस परिदृश्य के दूसरे पहलू को देखें तो अमेरिका और चीन के बीच जारी आर्थिक एवं तकनीकी टकराव का लाभ भारत जैसे देश को पश्चिमी दिग्गज कंपनियों से निवेश आकर्षित करने के लिए उठाना चाहिए।

इस दिशा में कुछ प्रयास फलीभूत होते भी दिख रहे हैं, जहां एमेजोन, माइक्रोसाफ्ट और गूगल जैसी दिग्गज अमेरिकी कंपनियों ने बीते एक साल के दौरान भारत में 67.5 अरब डालर के निवेश की घोषणा की है। लगभग 28 प्रतिशत आइफोन अब भारत में बन रहे हैं। यह घटनाक्रम चीन में व्यापार को लेकर अमेरिकी पूंजीवादी हलकों में व्याप्त शंकाओं का ही परिणाम है। यदि भारत चीन से दूर जा रहे अमेरिकी पूंजी निवेश को हासिल कर पाता है, तो इससे विकसित और शक्तिशाली राष्ट्र बनने के हमारे सपने को साकार करने में भारी मदद मिलेगी। वहीं, सामरिक मोर्चे पर आत्मनिर्भर बनते हुए आर्थिक मामलों में सूझबूझ से कदम उठाए जाएं तो चीन और अमेरिका के बीच बदलते समीकरणों का भारत एक बड़ा लाभार्थी बन सकता है।

(लेखक जिंदल स्कूल आफ इंटरनेशनल अफेयर्स में प्रोफेसर और डीन हैं)